प्राचीन भारत में सामाजिक तथा सांस्कृतिक एवं आर्थिक विकास में रूपांतरण का ऐतिहासिक विश्लेषण

Dr. ALOK KUMAR
Department of History,
B.R.A. Bihar University, Muzaffarpur.

Abstract :
मैंने वैज्ञानिक अवधारणा के आधार पर सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूपान्तरण को उत्पादन की शक्तियों और उनके अंतरसंबंधों के विकास के अभिन्न अंग के रूप में उपस्थापित किया है। उत्पादन की बदलते समीकरण से विश्व की सभी तत्कालीन ज्ञात सामाजिक व्यवस्थाओं का सामंतीकरण हुआ और विश्वव्यापी सामंतवाद का स्थापना हुआ। भारत की स्थितियां अलग नहीं थी। हाँ, हर क्षेत्र का सामंतवाद का स्वरूप अलग–अलग था, सो भारत का भी सामंतवाद अलग ढंग से विकसित हुआ और अलग स्वरूप में ढलता रहा। इसी को समझकर भारत की सभी समस्याओं का समाधान पाया जा सकता है। यह शोध पत्र भारत के अनछुए पहलुओं की स्पष्ट और सटीक व्याख्या भी करती है। इसी को समझकर और इसके धार्मिक आवरण को उतार कर यूरोप आज विकसित हो सका है। इसे समझे बिना और इसके सामंती स्वरूप को उतारे बिना भारत एक विकसित एवं अग्रणी देश नहीं बन सकता है। प्रस्तुत शोध पत्र में इसी उद्देश्य के साथ बारीकी से विश्लेषण किया गया है।

Keywords : संस्थागत सम्बन्ध, सामाजिक प्रतिमान, सामाजिक मूल्य, पदानुक्रम

Discussion :

सामाजिक रूपान्तरण मुख्यतः आर्थिक शक्तियों और उनके आपसी अंतर सम्बन्धों के प्रभाव में होता है; परन्तु इन्हीं आर्थिक प्रभावों में विज्ञान एवं तकनीकी नवाचार और राजनीतिक उथल–पुथल की भी भूमिका महत्वपूर्ण हो जाता है। सामाजिक रूपान्तरण का अर्थ समाज की संरचना एवं उनके प्रकार्य में परिवर्तन या रूपांतरण है। इसके अंतर्गत बुनियादी ढांचा एवं बुनियादी संरचना में बदलाव होता है। इस तरह रूपांतरण एक व्यापक, प्रभावी और स्थायी प्रक्रिया है। समाज के किसी भी क्षेत्र में व्यापक विचलन को सामाजिक रूपांतरण कहते हैं और इसमें इसके अन्य पक्षों को भी शामिल करते हैं। यह विचलन सकारात्मक या ऋणात्मक भी हो सकता है। सामाजिक रूपांतरण में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, नैतिक और भौतिक बदलाव आ जाते हैं।

जो रूपांतरण की शक्तियों को समझते हैं और उसके प्रभाव को समझते हैं। वे भविष्य को देखते एवं समझते हैं। वे भविष्य को बनाने एवं भविष्य को अपने पक्ष में व्यवस्थित करने में बहुत अच्छी तरह से सफल होते हैं। मानव जाति के उदविकास में किसी समय होमो इरेक्टस और नियंडरथल अपने शारीरिक क्षमता के आधार पर विश्व के बड़े भू–भाग में फैले थे और प्रभावकारी थे। ये लोग होमो सेपियन्स के बुद्धिमता के आगे टिक नहीं सके और उनको दुनिया से विदा होना पड़ा। आज जो होमो सेपियन्स (बुद्धिमान मानव) भविष्य को नहीं देख और समझ पा रहे हैं, वे जल्दी ही अपने जीवन में होमो ड्यूयस (देवता मानव) के सामने लुप्त होने वाले हैं। पहले पिछड़ी तकनीक के कारण रूपान्तरण में दशक नहीं, अपितु सदियों लगती

थी; पर अब रोज नई आती तकनीक में सदियाँ नहीं, दशक भी ज्यादा समय लेता लगता है। डाटावाद बहुतों को दिख ही नहीं रहा; प्रभाव की बात ही छोड़ दिया जाय। कृत्रिम बुद्धिमता, रोबोटिक्स, जीन इंजीनियरिंग, नैनो तकनीक और डाटावाद कैसे होमो सेपियन्स को समाप्त करने की ओर अग्रसर है, देखना और समझना आवश्यक हो गया है। यह प्रक्रिया तेजी से अपने उद्देश्य पर अग्रसर है। खैर यहाँ मेरा विषय इतिहास है; भविष्य नहीं है। लेकिन वर्तमान एवं भविष्य को जानने और समझने के लिए इतिहास यानि अपनी जड़ों को समझना जरूरी है। रूपांतरण में यानि इसके कारण स्थापित व्यवस्था और संगठन में विचलन होता है। यह विचलन प्राकृतिक शक्तियां या उत्पादन की शक्तियों के द्वारा होता है। इस विचलन को धार्मिक या अध्यात्मिक स्वरूप दे देने से इस विचलन का प्रभाव लंबे समय तक बना रहता है। यह धार्मिक या अध्यात्मिक स्वरूप दे देने से इस विचलन का प्रभाव लंबे समय तक बना रहता है। यह धार्मिक या अध्यात्मिक स्वरूप दे देने से इस विचलन का प्रभाव लंबे समय तक बना रहता है। यह धार्मिक या अध्यात्मिक प्रभाव इस जन्म के बाद भी निरंतरता का दावा कर लोगों को प्रभावित करता रहता है।

इस तरह यह बताया और समझाया जाता है कि जीवन की अनन्त एवं लम्बे यात्रा में वर्तमान जीवन में मजा ही मजा है। इस काल्पनिक व्याख्या में अधिकतर लोग अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं, पर तकनीकी परिवर्तनों के कारण स्थिति में तेजी से बदलाव हो हरा है। यह रूपांतरण मानव समाज के द्वारा भी योजनाबद्ध तरीके से किया जा सकता है, परन्तु इसमें भी उत्पादन की शक्तियों को ही प्रभावित करना होता है। उत्पादन में सभी की सहभागिता एवं सभी को क्षमता के अनुसार अवसर सुनिश्चित करना भी सकारात्मक सामाजिक रूपांतरण है। सामाजिक रूपांतरण की गति समय एवं परिस्थितियों के अनुसार बदलती रहती है। तकनीकी बदलाव से रूपांतरण की गति में तेजी आती है क्योंकि यह उत्पादन की शक्तियों को प्रभावित एवं परिवर्तित करता है। तकनीकी बदलाव के कारण ही औद्योगिकीकरण हुआ, नगरीकरण हुआ, साम्राज्यवाद स्थापित हुआ। तकनीकी परिवर्तन के कारण ही साम्राज्यवाद भी व्यापारिक साम्राज्यवाद में, फिर व्यापारिक साम्राज्यवाद भी औद्योगिक साम्राज्यवाद में रूपांतरित हुआ। अब औद्योगिक साम्राज्यवाद भी वित्तीय साम्राज्यवाद में रूपान्तरित हो गया है। इसी के आने के कारण ही द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद कतिपय देशों को रराजनीतिक आजादी प्रदान की गयी, भले वहाँ के राजनेता अपनी तथाकथित भूमिका के पक्ष में हवा बनाते रहे और आजादी का साख स्वयं लेते रहें। वित्तीय साम्राज्यवाद अभी भी सभी पुराने उपनिवेशों में सहज उपस्थित है। उत्पादन की शक्तियों में ही परिवर्तन के कारण संगणन युग आया, सूचनाओं का युग आया। वर्तमान युग डाटा का है, कृत्रिम बुद्धिमता का युग है, रोबोटिक्स का युग है, और जेनेटिक इंजीनियरिंग का युग आ रहा है। इससे समाज में बहुत बड़ा परिवर्तन यानि रूपांतरण के साथ व्यक्ति, परिवार और वर्ग का परिस्थिति, स्तर, योग्यता, निर्योग्यता, मूल्य, अधिकार, व्यवहार और अपेक्षाएं बदल जाती हैं या नए ढ़ंग से निर्धारित एवं स्थापित होती है। इस तरह सामाजिक रूपांतरण में सांस्कृतिक रूपांतरण एक दीर्घकालीन एवं महत्वपूर्ण हिस्सा होता है। सामाजिक रूपांतरण के पाँच प्रकार बनाए जा सकते हैं – आवर्ती परिवर्तन, परावर्तित परिवर्तन, अनुवादित परिवर्तन, पुन–आकृतिग्रहण और विरूपित परिवर्तन। आवर्ती परिवर्तन जलवायविक परिवर्तन या इसी तरह के अन्य परिवर्तन के कारण होता है। गरीबी का दुष्चक्र भी आवर्ती परिवर्तन होता है। परावर्तित परिवर्तन में समानांतर चल रहे अन्य परिवर्तनों के प्रभाव के कारण होता है। ब्रिटिश शासन में लोगों में परिवर्तन को अनुवादित परिवर्तन कह सकते हैं जो ब्रिटिश संस्कृति का अनुवाद मान सकते हैं। इसे परावर्तित परिवर्तन को अनुवादित परिवर्तन कह सकते हैं

जो ब्रिटिश संस्कृति का अनुवाद मान सकते हैं। इसे परावर्तित परिवर्तन को अनुवादित परिवर्तन कह सकते हैं जो ब्रिटिश संस्कृति का अनुवानद मान सकते हैं।

इसे परावर्तित परिवर्तन की श्रेणी में भी रख सकते हैं। पुनः आकृतिग्रहण परिवर्तन में मूल अवस्था मान सकते हैं। इसे परावर्तित परिवर्तन की श्रेणी में भी रख सकते हैं। पुनः आकृतिग्रहण परिवर्तन में मूल अवस्था पाने का दापा हो सकता जो बहुधा होता ही नहीं है। विरूपित परिवर्तन में पहले से स्थापित व्यवस्था में विरूपण के कारण परिवर्तन होता है जैसे सामंत काल में बौद्धिक या सम्यक संस्कृति में विरूपण के कारण परिवर्तन हुआ। ऐसा परिवर्तन उस काल में विश्वव्यापी रहा। इन पाँचों प्रकार का उदाहरण भारत के सामंती काल में देखने को मिलता है क्योंकि इस काल में बहुत से मौलिक और सतही परिवर्तन हुए हैं जिसे सामाजिक एवं सांस्कृतिक (धामिक) रूपांतरण भी कह सके हैं। सामाजिक रूपांतरण के कुछ स्रोतों में खोज, आविष्कार, प्रसाद, आंतरिक विभेदीकरण तथा उत्पादन की शक्तियों का प्रभाव रहता है। रूपांतरण की शक्तियों में कं करकों को गिना जाता है– भौतिक कारक, आर्थिक कारक, जनान्कीय कारण, सांस्कृतिक कारक, सामाजिक कारक, राजनीतिक कारक और तकनीकी कारक। भौतिक कारक में भौगोलिक कारणों को गिना जाता है जैसे स्थान का बदलाव, मौसम का बदलाव, पर्यावरण का बदलाव, भू–आकृति में बदलाव, वनां का विनाश या वनीकरण इत्यादि। आर्थिक कारणों में उत्पादन की शक्तों और उनके आपसी अंतर्संबंधों में बदलाव आ जाता है जैसे कृषि, क्रान्ति, सामंती क्रान्ति, वाष्प क्रान्ति, विद्युत क्रान्ति, संगठनात्मक क्रान्ति, बुद्धिमता क्रान्ति, डाटा क्रान्ति आदि। जनान्कीय कारक में युवाओं और बुजुर्गों का जनसंख्यात्मक अनुपात में बदलाव आता है। महिलाओं के घर से बाहर निकलने के कारण समाज के गतिविधियों में हिस्सेदारी से आबादी में आनुपातिक वृद्धि आदि प्रमुख है। यदि हम सामाजिक रूपांतरण के प्रारूपों को समझना चाहें तो इसे उद्विकास, प्रगति, विकास और क्रान्ति के रूप में कर सकते हैं।यों तो परिवर्तन की गति सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में देखी जाती है, परन्ततु भौतिक जीवन की गति विचरों एवं संस्थाओं की तुलना में ज्यादा तेज होती है। अर्थात् विचारों एवं संस्थाओं में परिवर्तन धीमी गति से होती है। भौतिक संरचना में बहुत जल्दी बदलाव लाया जा सकता है, परन्तु लोगों की मानसिकता में बदलाव धीमी गति से होता है। मानसिकता में बदलाव संस्कृति में बदलाव है और इसीलिए यह सामान्यता काफी धीमी गति से होता है। इस डिजिटल जमाने में और नए उम्र के लोगों के कारण इस मानसिकता में भी यानि इस संस्कृति में भी बहुत जल्दी बदलाव लाए जा सकते हैं। आज के युग में सुनियोजित एवं सुविचारित परिवर्तन ही लक्षित परिणाम निर्धारित समय में दे सकता है। आज के तकनीकों के साथ हम छोटे अंतराल में ही बड़ा सामाजिक रूपांतरण कर सकते हैं।

समाज विकास के ऐतिहासिक क्रम में तीसरा और दीर्घकालिक चरण सामंतवाद को माना जाता है। इस ऐतिहासिक विकास क्रम में पहला चरण कृषिवाद कहा जा सकता है जब होमो सेपिएंस पाषाण पर से निर्भरता कम करने के लिए एवं कृषि कार्य के लिए नदी घाटियों में बसना शुरू किया था। इसे ग्रामीणीकरण भी कह सकते हैं जब गाँवों का उदय एवं विकास होना शुरू हुआ। यह लगभग दस हजार वर्ष ईसा पूर्व से शुरू हुआ। इसके दुसरे चरण को बौद्धिकवाद कह सकते हैं जब अतिरिक्त कृषि उत्पादन के कारण नगरां एवं राज्यों का उदय होना शुरू हुआ और बौद्धिक विकास को गति मिली। इसका काल लगभग एक हजार ईसा पूर्व से शुरू हुआ। तीसरा चरण सामंतवाद है जब नगरों का ह्रास होना शुरू हुआ और सारी आबादी गाँव चली गयी और कृषि पर निर्भर हो गयी। इसमें सामंतों का उदय एवं विकास हुआ। इसका शुरूआत नौवीं शताब्दी के आसपास हुआ। इसे मध्य काल का शुरूआत भी कहते हैं। इस

अवनागरीकरण भी कहा जा सकता है। इस काल में आर्थिक–सामाजिक संरचना, राजनीतिक ढांचा और सांस्कृतिक ढांचे में नकारात्मक परिवर्तन हुआ। इस काल में समेकित उत्पादकता और उत्पादन घट गयी। इसके बाद के चरण में औद्योगिकीकरण एवं पूँजीवाद आया और फिर उपनिवेशवाद भी आया। सामंतवाद का सबसे पहले और सबसे अधिक अध्ययन यूरोप में किया गया है। यूरोप में सामंतवाद की व्याख्या प्राक – पूंजीवादी समाज के रूप में किया जा रहा हैं बाद में भारतीय इतिहासकारों का एक तबका यूरोपीय अध्ययन से प्रभावित होकर भारत के आर्थिक–सामाजिक विकास और उस पर आधारित राजनीतिक व्यवस्था एवं सांस्कृतिक स्वरूप को पहचानने में किया। मानव समाज के विकास के किसी भी ऐतिहासिक स्थिति या अवस्था को उसके आर्थिक–सामाजिक व्यवस्था और उस पर आधारित राज्य की संरचना, शासन पद्धति एवं सांस्कृति विचारधारा को एक सम्पूर्ण इकाई के रूप में समझने का दृष्टिकोण विकसित हुआ। इस दृष्टिकोण को सामंतवाद पर भी लागू कर उसकी व्याख्या को व्यापक रूप दिया गया है। इस दृष्टिकोण से सभी मध्यकालीन समाजों का अध्ययन किया जाने लगा और इसमें उनकी क्षेत्रिय एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों की भिन्नताओं का ध्यान रखा जाने लगा।

सामंती–व्यवस्था प्राचीन काल के राज–व्यवस्था से भिन्न रूप में विकसित हुआ, जिसमें राजकर्मचारियों एवं सैनिकों को नगद वेतन की जगह उनकी हैसियत यानि परिस्थिति के अनुसार छोटा–बड़ा भू–क्षेत्र दिया जाने लगा। इसमें एक बड़ा हिस्सा पुरोहित वर्ग को भी मिलना शुरू हो गया जो उनके समाज पर उनके प्रभाव के स्वभाव एवं उनके सामंती हितों के अनुरूप होता था। इनका काम बदले हुए परिस्थिति में सामंतों के पक्ष में धामिक एवं दैवीय व्याख्या करने और समर्थन करने की होती थी। ऐसे भू–क्षेत्र जर्मन भाषा में ''फिफ'' या ''फ्युड'' कहलाता था और इसका स्वामी फ्यूडल (सामन्त) कहलाता था। इन सामन्त योद्धाओं के नेतृत्वकर्त्ता महान योद्धा को सम्राट कहा जाने लगा। भारत में छोटे सामंत राजा और बड़े सामन्त महाराजाधिराज जैसे अलंकृत उपाधियों से अपने को सम्मानित करते थे। पहले सामंतों को मात्र भूमि का राजस्व वसूलने का अधिकार दिया गया था। बाद में इन सामंतों ने दैवीय सिद्धांत स्थापित कर उनकी जमीनों कपर स्वामित्व बताने लगे। दैवीय सिद्धांतों के अनुसार सभी भूमि, क्षेत्र, तालाब, वन, चारागाह, पहाड़–पठार आदि का स्वामी ईश्वर यानि देवता है। इन सामंतों को देव पुत्र घोषित किए जाने के बाद ये देवताओं के तथाकथित उत्तराधिकारी हुए और इसी कारण ये स्वाभावित रूप से इन भूमि इत्यादि संपदाओं के भी स्वामी होने लगे। इसके परिणामस्वरूप समाज छोटे–बड़े भुधारी योद्धा सामान्त और कमियाँ किसान में विभक्त हो गया। इस तरह कृषकों के श्रम का शोषण सामंतों के विलास एवं वैभव का आधार बन गया। यह व्यवस्था जल्दी ही जन्म आधारित यानि पुस्तैनी हो गया एवं स्थाई हो गया। यूरोपियन इतिहासकार हेनरी पेरिन ने यूरोप में सामंती व्यवस्था के उदय में इस्लामी आक्रमण और इसके प्रसार को प्रमुख माना है। इनके अनुसार इस्लामी आक्रमण के कारण पश्चिम का पूरब से चल रहे व्यापार क्रमशः कम होते हुए बंद हो गया और नगरों का पतन होने लगा। इससे केन्द्रीकृत राजवंशों का पतन होने लगा और मध्यस्थ राजतन्त्र की आवश्यकता होने लगी। चल–अचल सम्पत्ति के स्थान पर कृषि योग्य भूमि ही सम्पदा एवं हैसियत का आधार बन गया। भूमि के बड़े–बड़े क्षेत्रों पर स्वामित्व बनाना ही सामाजिक और आर्थिक पहचान बनने लगा। इस तरह भू स्वामित्व भी राजनीतिक सत्ता का आधार बनने लगा। व्यापार में ह्रास के कारण ही मुद्रा की कमी होने लगी क्योंकि मुद्रा अपनी स्वीकार्यता एवं सर्वमान्यता पर विपरीत प्रभाव पड़ा है। इससे मुद्रा का ही उपयोग घटने यानि कमतर होने लगा। मुद्रा के कमी आने से सेवाओं का भुगतान

स्थानीय कृषि उत्पादों से होने लगा जो कृषि लगान यानि राजाओं के राजस्व संग्रहण का हिस्सा होता था। इसके मात्रा एवं आयतन के बड़े होने से इसके संग्रहण, परिवहन एवं भण्डारण की समस्या होने लगा।

इसमें सामंती समाज को दास समाज (प्राचीन समाज) के गर्भ से उत्पन्न एवं उत्पादन की एक नई और गतिमान पद्धति के रूप में व्याख्यापित किया। पूरब से व्यापार बाधित होने के कारण यूरोप के बाजारों में कतिपये समानों की कमी पड़ने लगी। इसके प्रतिपूर्ति के लिए दास स्वामियों के द्वारा कोई अतिरिक्त प्रयास नहीं किया जा रहा था। ऐसी स्थिति में आवष्यक कृषि उत्पादों की अभिवृद्धि और सैन्य शिल्पों सहित दुसरे सामानों की वैकल्पिक व्यवस्था जरूरी हो गया था। सैन्य संभ्रांतो ने कृषकों और शिल्पियां पर अपना स्वामित्व स्थापित करने के लिए अपने अपने हैसियतों के अनुसार आपसी सम्बन्ध कायम किया। इससे सामंती समाज का राजनीति ढाँचा और शोषण का दर्शन उभरने लगा। इससे धार्मिक संस्था (चर्च–मठ–मन्दिर) बड़ा–बड़ा जागीर पाने के लिए सैन्य–संभ्रातों को बड़े योद्धायों के हैसियत से देवत्व के हैसियत तक पहुँचाकर उसके समक्ष लोगों में आत्मसमर्पण की भावना भरने का जबरदस्त कार्य किया था। इतिहासकार मार्क ब्लाक ने सामंतवाद को एक ऐसी परिस्थिति माना जिसमें भू–सम्पदा के अधिकार का विभाजन होना शुरू हुआ। भू–सम्पदा के अधिकतर क्षेत्र पर अधिकार करने की होड़ ने राजनीतिक सत्ता का विस्तार किया। इस प्रवृति से अर्थात् युद्ध के माहौल में अधीनस्थों को सुरक्षा और उपर वालों की अधीनता का सम्बन्ध विकसित हुआ। इस प्रक्रिया में अर्थात सामंती तंत्र के विकास में कबीले तंत्र का परिवार तंत्र में विभाजन हुआ। इसके कारण उनके बीच भूमि पर वर्चस्व के संघर्ष में क्षेत्रिय प्रभुत्व या मुखिया तंत्र का विकास एक महत्वपूर्ण परिवर्तन था। विरोधियों से सुरक्षा पाने के लिए बड़े योद्धा के आश्रय में जाने की बाध्यता ने सामंती व्यवस्था में पदानुक्रमण का विकास किया। इस तरह सम्राट (सबसे बड़े योद्धा) के अधीन छोटे–बड़े सामंतों की जमात बन गया जिससे माहौल अपेक्षाकृत शांतिमय एवं निश्चिन्त हो गया। परिणामस्वरूप छोटा परिवार तंत्र अपने से बड़े योद्धा तंत्र को सैनिक सहयोग देने, अपनी कृषि उपज का एक निश्चिन्त भाग पहुँचाने और समय–समय पर सशरीर उपस्थित होकर अपनी ओर से नजराना पेश कर अपनी स्वामिभक्ति दिखाने का अभ्यस्त होने लगे। इस तरह अधीनस्थों को सुरक्षा और इसके बदले में आज्ञापालन एवं हर तरह से समर्पित रहना सामंतवाद का वैचारिक आधार बना। इतिहासकार जॉर्ज डुवी ने सामतवाद को सिर्फ एक आर्थिक सामाजिक संरचना ही नहीं माना, बल्कि उसं मध्ययुगीन समाज का सम्पूर्ण सांस्कृतिक विचारधारा माना है। प्राचीन समाज में स्वामी के लिए कुछ ही व्यक्ति (दास, गुलाम) काम करता था जो व्यवस्था अब समाप्त हो गया। इससे आजाद लोग एवं गुलाम के बीच का अंतर समाप्त हो गया। सभी कृषकों और शिल्पियों को अब ज्यादा शुल्क चुकाना अनिवार्य हो गया। कृषकों को बेगार (बिना किसी पारिश्रमिक के काम करना) करना पड़ता था। सामन्ती व्यवस्था ने पूरे गाँव के सभी लोगों पर अपना बोझ डाल दिया था। तत्कालीन बुद्धिजीवी वर्ग यानी पुरोहित एवं धार्मिक संस्था पहले इस नयी व्यवस्था का विरोध कर सामंतों को अपना महत्व दिखाया और फिर सामंतों को समर्थन देकर कर विहीन जागीर पा लिया। फिर ये भी किसानों का उसी तरह शोषण करने लगे। इन उपादानों (लाभों) के बदले सामन्तों को पुरोहित वर्गों का नैतिक एवं वैचारिक समर्थन मिलने लगा तथा उन सामन्तों के पक्ष में साहित्य एवं शास्त्र की रचना होने लगी। पुरोहित वर्ग सामन्ती शोषण तंत्र का वैचारिक उपकरण बन गए। इनके अनुसार सामंती समाज में समानता का तो अंत हुआ ही, आराम (विलासता) एवं कठोर श्रम का वैशम्य के पराकाष्ठा पर पहुँच गया था। इस नयी व्यवस्था में समाज चार विभिन्न श्रेणियों में विभक्त हो गया – 1. पुरोहित वर्ग जो सामंतों के हित के लिए प्रार्थना करते एवं लोगों को धार्मिक व्याख्या कर उनके विक्षोभों एवं विरोधों को

शांत रखता था। इसके अतिरिक्त वे अन्य कोई उत्पादक कार्य नहीं करते और आराम करते रहते। 2. सामन्त वर्ग जो कृषकों एवं शिल्पियों के सुरक्षा एवं संरक्षण के नाम पर युद्ध करते और उनके उत्पादों का हिस्सा प्राप्त करते। 3. वणिक वर्ग जो कृषकां एवं शिल्पियों के उत्पादों को विनिमय के लिए उपलब्ध करता था, हालांकि गाँव आत्मनिर्भर हो गए थे और इसीलिए इनकी आवश्यकताकतिपय कुछ ही चीजों के लिए ही थी। इसी कारण कई इतिहासकार इनकी संख्या कम होने के कारण इनके वर्ग की गिनती ही नहीं करते हैं। 4. कृषक एवं श्रमिक वर्ग जो अपने अतिरिक्त उपरोक्त तीनों वर्गों को भोजन आदि की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए कृषि एवं पशुपालन करते थे। मुख्य राजाओं को इसके बदले में यथानिर्धारित सेवाएँ मिलती रहती थी। कालान्तर में ये भूधारी क्षेत्र के भूमि पर अपना स्वामित्व का दावा भी जताने लगे। भूमि के स्वामित्व के दावे को विवादित होने के कारण भू–स्वामित्व का दैवीय सिद्धान्त स्थापित किया जिसमें सभी भू क्षेत्रों का स्वामित्व देवताओं को माना गया और यह विवाद समाप्त करने का कारगर उपाय साबित हुआ। 'सभी भूमि देवताओं की है' का सिद्धान्त स्थापित होने के बाद सामन्तों को देवपुत्र घोषित किया जाने लगा तथा राजतिलक समारोह में विधिवत देवत्व पाने को मान्यता दी जाने लगी। भारत में पुरोहित वर्ग अपने को देव यानि देवता ही घोषित कर लिया। पुरोहित वर्ग सामंतों के दैवीय अधिकारों की मान्यता देने लगा। इसी के साथ सामंती संस्कृति का उदय हुआ।

ब्रिटिश इतिहासकार पेरी एन्डरसन (1978) ने बताया कि किसानों ने उत्पादन में वृद्धि भी की जिसे (अधिशेष को) सामंत और पुरोहित कर्मकाण्डों को बढ़ाते हुए हड़पने लगे। किसानों के लिए स्वर्गिक सुख पाने के व्यवहारिक एवं सरल उपाय के साने दिखाए जाने लगे। सम्पूर्ण राज्य का कार्य उपर से नीचे तक उर्ध्वाकार रूप में विभाजित हो गया। सामाजिक ढाँचा भी इसी के अनुरूप ढलता गया और मजबूत हो गया। भारत में जातीय व्यवस्था भी इसी का प्रतिरूप एवं प्रतिलिपि है जो एक उर्ध्वाकार सीढ़ीनुमा ढाँचा बन गया। इतिहासकार एलिजाबेथ ब्राउन के अनुसार 'धर्म, धार्मिक विचार– विश्वास एवं संस्थाएँ' सामन्तवाद की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता रही है। अधिकतर भारतीय इतिहासकार सामंतवाद के इन पहलुओं को जानबूझकर उपेक्षित कर जाते हैं क्योंकि इनका अध्ययन इनके जातीय, जो जन्म के आधार पर प्राप्त विशेषाधिकार, हितों के विरूद्ध चला जाता है।

इन सामंतवादी विचारों के खिलाफ यूरोपीय समाज धार्मिक संस्थाओं पर व्यवहारिक प्रतिबन्धों को लगाकर ही समाज को विकसित और समृद्ध कर सका। भारत में शासन को सैद्धान्तिक रूप में इन सामंतवादी धार्मिक विचारों से निष्पक्ष बताया जाता है। यही सामंतवाद (अपने धार्मिक आवरण में) कारण है जिससे भारत जैसा संसाधनपूर्ण देश अभी भी तुलनात्मक विकास में बहुत पीछे है। सामंतवाद एक साथ किसानों के श्रम पर आधारित उत्पादन की पद्धति, आर्थिक–सामाजिक संरचना, तथा अबाध गति से शासितों के शोषण का दर्शन भी था जो पूरी तरह धार्मिक व्यवस्था से सम्पोषित एवं सुरक्षित था। इसे प्राक् औद्योगिक या प्राक् पूँजीवादी समाज भी कहा जाता है। सामन्तवाद में सम्प्रभुता पूरी तरह उर्ध्वाकार रूप में बँटा होता था। सामन्तों ने समाज के प्रबुद्ध वर्ग जो पुरोहित थे, के साथ समझौता कर लिया, या यों कहें कि गँठजोड़ बना लिया था। ये पुरोहित ही समाज को धामिक व्याख्या प्रस्तुत करते थे और इसलिए सारा समुदाय को अनपढ़ एवं गरीब बनाया गया ताकि इनकी धार्मिक व्याख्याओं को सही माना जाय। यही पुरोहित सामन्तों को देवत्व प्रदान करते थे। यूरोप में तो चर्च धार्मिक पवित्रता का बांड ही बेचा करता था। यही पुरोहित जन समुदाय के लिए अगले जन्त (जो होता ही नहीं है) में बेहतर सुविधा एवं विशेषाधिकार प्राप्त कराने का आशा दिलाते थे। यही बौद्धिक वर्ग (अधिकतर पुरोहित) इन सामंतों के पक्ष में इस तरह

की साहित्य की रचना करने लगे जिसमें सामन्तों में देवत्व की स्थापना की और सामंत को देवताओं का संतान बताया गया। सारी भूमि देवताओं की बतायी गयी और सामंत देवताओं के पुत्र माने जाने लगे। इस नाते सामंत को धरती पर भूमि का वास्तविक मालिक माने जाने की धार्मिक स्वीकृति मिली। सामंत अब राजा भी कहलाने लगे। राजा अपने क्षेत्र के भूमि की ही नहीं, अपितु सभी वासियों एवं सभी संसाधनों का भी स्वामी स्वीकार्य हो गया। पुरोहित चूँकि देवत्व प्रदान करते थे, इसलिए सामाजिक संरचना में राजा से उपर माने गये। क्षेत्रों के स्वामी को क्षेत्रीय कहा गया जो कालान्तर में क्षत्रीय कहलाए। इस शोषण के खिलाफ विद्रोह करना तो दूर की बात थी, मंशा पालना भी पाप और अनिष्ठकारी बताया गया, क्योंकि यह ईश्वरीय इच्छा का परिणाम था। इस शोषण को भी प्रभु की कृपा एवं परीक्षण का तरीका बताया गया। धर्मशास्त्र में इस शोषण को दैवीय स्वीकृति दे दी गयी।

बौद्ध दर्शन न्याय, समानता, स्वतंत्रता एवं बंधुत्व पर आधारित है जबकि सामंतवाद समानता का अंत की अवधारणा पर आधारित है। हिंदू दर्शन या संस्कृति भी समानता का अंत करता है। सामंतवाद का विकास प्राचीन काल की समाप्ति एवं मध्य काल के प्रारंभ में हुआ। बौद्ध संस्कृति का पतन और नई सामंती संस्कृति का उदय एक साथ हुआ है। इसके कारणों को समझने के लिए सामंतवाद को समझना बहुत ही महत्वपूर्ण एवं आवश्यक है। भारत में सामंतवाद को सर्वप्रथम माननीय दामोदर धर्मानन्द कौशाम्बी तथा प्रो. रामशरण शर्मा (भारतीय सामंतवाद–1965) ने समझाने का प्रयास किया। गुप्तकाल के अंतिम समय में दूरस्थ राजकीय कर्मचारियों को दिया जाने वाला नगर वेतन भू–अनुदान (अग्रहार) में परिणत होने लगा। पहले दानग्राही को राजस्व पाने का अधिकार रहा, किन्तु बाद में पुरोहितों एवं धार्मिक शास्त्रों के समर्थन से किसानों की जोत का जमीन, अन्य सम्पदा एवं स्वयं निवासी किसान पर भी दानग्राही का स्वामित्व होने लगा। फलतः किसान राज्य की जगह दानग्राही का रैयत हो गया। ऐसी अवस्था में व्यवस्था पूर्व के काल के समाज में व्यापक नहीं था। प्रो. रामशरण शर्मा ने मध्यकालीन यूरोप की भांति भारतीय सामंती समाज में प्रारम्भिक चरण में व्यापार, बाजार और बाजारू मुद्राओं के ह्रास को सामंतवाद का प्रारंभिक प्रमुख लक्षण के रूप में उद्घाटित किया। गुप्तों के स्वर्ण सिक्के (अत्यधिक मूल्य के कारण) बाजारू सिक्के नहीं थे, वरन् संपत्ति संग्रहण के माध्यम थे। गुप्तकाल में तांबा और चांदी के सिक्के अल्प मात्रा में ही ढ़लवाएँ गए थे। यह बाजार और व्यापार के ह्रास के परिणाम थे। किसानों और शिल्पियों से बेगार लिया जाने लगा। जमीन जोतने के लिए जो पट्टा दिया जाता था, उसमें हेर–फेर करने का अधिकार सामंतों को था। बाद के कालों में भूस्वामी (सामन्त) के बदलने पर भी किसान भूमि से बँधा रहने लगा। हर्ष के शासनकाल के अभिलेखों और बाणभट्ट के हर्षचरित एवं कादम्बरी के अनुसार सामन्ती व्यवस्था के पूर्णतः स्थापित होने के लक्षण आ गए थे। व्यापार में ह्रास आने से बिना मुद्रा का उत्पादन और बिना मुद्रा का विनिमय (वस्तु विनिमय) भारतीय अर्थव्यवस्था का आधार बन गया। गाँव स्वावलम्बी होते गए और बाजार व्यवस्था सामान्य जन जीवन में आवश्यकताओं के लिये न्यून होती गयी। इस काल में नमक, तेल और कपड़े के चलन्त मण्डी (हाट, मेला) की ही चर्चा मिलती है। समाज के अभिजात वर्ग ने गुप्तकाल में सामंती तंत्र के उदय एवं विकास के कारण ही इस काल को भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग घोषित किया और व्याख्यापित किया। इस काल में विशाल समुदाय (जो पुरोहित एवं क्षेत्रीय वर्ण के अतिरिक्त थे) गरीबी में जीने को मजबूर हो गए। समाज अभिजात सामंत और रैयत किसान में विभाजित हो गया। उपरोक्त वर्णित विख्यात इतिहासकारों ने सामंतवाद एवं भारत में सामंतवाद पर वैज्ञानिक एवं तार्किक दृष्टिकोण से परिस्थितियों को समझाने का सार्थक प्रयास किया है और भारतीय समाज को समझने के लिए खोजपूर्ण नए तथ्यों का उपस्थापना किया

है। इन्होंने इतिहास की व्याख्या उत्पादन की शक्तियों और उनके अंतर सम्बंधों के आधार पर किया है। भारतीय इतिहास और समाज को नए दृष्टिकोण से समझने के लिए खोजपूर्ण नए तथ्यों का उपस्थापन किया है। इन्होंने इतिहास की व्याख्या उत्पादन की शक्तियाँ और उनके अंतर सम्बंधों के आधार पर किया है। भारतीय इतिहास और समाज को नए दृष्टिकोण से समझने के लिए अध्ययन, अध्यापन एवं अनुसंधान में निम्न तथ्यों को सम्मुख कर विचार किया जाना समुचित होगा। रोमन साम्राज्य के पतन और अरबों के उदय से पूरब और पश्चिम में प्रचलित व्यापार बाधित होने लगा। व्यापार से जुड़ी गतिविधियाँ बुरी तरह प्रभावित होने लगा। शिल्प एवं व्यापार के घटने से कृषि ही अर्थव्यवस्था का आधार होने लगा तथा चल सम्पत्ति नगदी सहित घटने लगी। भूमि के बड़े–बड़े क्षेत्रों पर स्वामित्व बनाना सामाजिक पहचान बनने लगा। सामन्ती समाज में 'आराम एवं श्रम का विरोधाभास' पराकाष्ठा पर पहुँच गया था। एक वर्ग भूमि पर आधिपत्य जमाए रखने के लिए युद्ध करते थे, दूसरा वर्ग पुरोहितों का हुआ जो सामंतों के पक्ष में देवत्व एवं वैचारिक (धार्मिक) समर्थन देते थे, तथा तीसरा वर्ग जो उपरोक्त दोनों वर्गों का पालन पोषण करता रहा। क्षेत्र विशेष की आवश्यकतानुसार सेवक में किसान, शिल्पी, व्यापारी आदि थे जिनकी संख्या अर्थव्यवस्था की बदलती स्वरूप में बदलने लगी। सामंतवाद के पहले सेवकों की स्थिति व्यक्तिगत सेवकों की थी और इसलिए इनकी संख्या निश्ति थी एवं कम थी। किसान खेतों में, शिल्पी कारखानों में और व्यापारी नगरों में प्रमुखता से उपलब्ध रहे।

सामंतवाद में शिल्पी एवं व्यापारी लगभग समाप्त हो गए और सेवक सहित सभी वर्ग किसान बन गए। ये सभी किसान बनकर मूलतः सेवक ही बन गए। इस काल में ही उपरोक्त दो वर्गो के अलावा सभी तीसरे सामान्य वर्ग का हिस्सा हो गया। यूरोप की तरह यहाँ भी इस सामन्ती श्रृंखला में उपर वाले को नीचे वाले का शोषण करने का अधिकार और नीचे वाले को उपर वालों से शोषित होने की लाचारी थी।

संदर्भ :–

1. जाफ्रेलॉट, सी. (2003), इन्डिया स साइलेन्ट रिपोलूशन : दि राइज ऑफ लोअर का कॉस्टम इन नॉर्थ इन्डिया, लन्दन : सी हर्स्ट एंड को
2. शर्मा, एन. (2005) अग्रेरिअन रिलेशन्स एंड सोशिओ–इकोनॉमिक चेन्ज इन बिहार, इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 40 (10), 960–972
3. प्रसाद, पी.एच. (1975), अग्रेरिअन अनरेस्ट एंड इकोनॉमिक चेंज इन रूरल बिहार : दि थ्री केस स्टडीज इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 10 (24), 931–937
4. सिन्हा, ए. (1996), सोशल मोबलाइजेशन इन बिहार : ब्यूरोकेटिक फ्यूडलिज्म एंड डिस्ट्रीब्यूटिव जस्टिस इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 31 (51), 3287–3289
5. रोबीन, सायरिल (2009), बिहार : दि न्यू स्ट्रान्गहोल्ड ऑफ ओबीसी पॉलिटिक्स इन दि राइज ऑफ दि प्लेबियन्स? दि चेन्जिंग फेस ऑफ इन्डियन लेजिसलेटिव असेम्बलीज (पृष्ठ 65–102), नई दिल्ली : रूटलेज
6. ब्रटेल्स, लैरी, एम. (2008), दि स्टडी ऑफ इलेक्टोरल बिहैवियर, इन जेन ई. लेगली (एडिट) द ऑक्सफोर्ड हैन्डबुक ऑफ अमेरिकन इलेक्शन्स एंड पॉलिटिकल बिहैवियर (पृष्ठ 239–261), न्यूयॉर्क : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस

7. राजलक्ष्मी, टी.के. (2001), लैंड राइट एंड रांग्स इन बिहार फ्रन्टलाइन, 18 (22),
8. सिंह, संतोष (2012), अ लैस्टिंग सिग्नेचर ऑन बिहार स मोस्ट वाइलन्ट इअर्स. द इन्डियन एक्सप्रेस
9. एन्डरसन, आर. एंड, ए. हीथ (2003) सोशल आइडेन्टीटीज ऐन्ड पॉलिटिकल क्लीवेज्स : दि रोल ऑफ पॉलिटिकल कॉन्टेक्स्ट, जर्नल ऑफ दि रॉयल स्टटिस्टिकल सोसाइटी, 166 (3), 301–327
10. बटलर, डी. एंड स्टोक्स, डी.ई. (1974), पॉलिटिकल चेन्ज इन ब्रिटेन : द इवोलुशन ऑफ इलेक्ट्रोरल च्वॉइस, लंदर : मैकमिलन प्रेस
11. लिपसेट, एस.एम. एंड रोक्कन, ए. (1967) : क्लीविज स्ट्रक्चर्स, पार्टी सिस्टम्स एन्ड वोटर अलॉइनमेन्ट्स : ऐन इन्ट्रोडक्शन, इन एस.एम. लिपसेट एंड एस. रोक्कन (एडिट), पार्टी सिस्टम्स एंड वोटर अलॉइनमेन्ट्स : क्रास–नेशनल पर्स्पेक्टिव्स (पृष्ठ 1–64), न्यूयॉर्क : फ्री प्रेस